नईदुनिया

संपादकीय

राज्यसभा चुनाव : मध्यप्रदेश में कांग्रेस की परीक्षा

मध्यप्रदेश की राजनीति में 18 जून को होने वाला राज्यसभा चुनाव सिर्फ तीन सीटों का गणित नहीं, बल्कि दोनों दलों के संगठनात्मक अनुशासन और भीतरी एकजुटता की असली परीक्षा बन गया है। भाजपा ने दो सीटों पर जीत लगभग तय होने के बावजूद तीसरा प्रत्याशी उतारकर जो रणनीति अपनाई है, वह साफ संकेत देती है कि कांग्रेस के किले में सेंध लगाने की तैयारी है। दूसरी ओर, दिग्विजय सिंह का यह बयान कि उन्हें कांग्रेस ने विधानसभा, लोकसभा और राज्यसभा में पर्याप्त अवसर दिए हैं, इसलिए अब किसी और को मौका मिलना चाहिए, महज त्याग नहीं बल्कि कांग्रेस के भीतर की बेचैनी का संकेत भी माना जा सकता है।

राज्यसभा चुनाव में क्रॉस वोटिंग गैरकानूनी नहीं होती, क्योंकि यहां व्हिप लागू नहीं होता। फिर भी जब इस प्रकार की घटनाएं बार-बार सामने आती हैं, तो जनादेश की भावना प्रभावित होती है। मध्यप्रदेश 2020 के राजनीतिक घटनाक्रम का दंश झेल चुका है। जनता ने 2023 के विधानसभा चुनाव में भाजपा को स्पष्ट बहुमत दिया है। ऐसे में यदि फिर जोड़-तोड़ की राजनीति चर्चा का विषय बनती है तो लोकतांत्रिक व्यवस्था में आम नागरिक का भरोसा कमजोर पड़ सकता है।

विधानसभा में कुल 230 सदस्य हैं और राज्यसभा की एक सीट जीतने के लिए 58 प्रथम वरीयता वोटों की आवश्यकता है। भाजपा के पास 163 विधायक हैं। इस आधार पर वह दो सीटें आसानी से जीत सकती है और उसके पास 47 वोट शेष बचते हैं। कांग्रेस के 66 विधायक हैं, जिन्हें अपनी एक सीट सुनिश्चित करने के लिए 58 वोट चाहिए। निर्दलीय, बसपा और सपा के एक-एक विधायक भी समीकरण को प्रभावित कर सकते हैं। भाजपा ने तीसरा उम्मीदवार उतारकर मुकाबले को रोचक बना दिया है। यदि उसे अतिरिक्त समर्थन मिलता है या कांग्रेस में क्रॉस वोटिंग होती है तो तीसरी सीट का परिणाम बदल सकता है। यही कारण है कि कांग्रेस अपने विधायकों को एकजुट रखने में जुटी है।

दिग्विजय सिंह का चुनाव न लड़ना भी महत्वपूर्ण राजनीतिक संदेश माना जा रहा है। वे प्रदेश कांग्रेस के सबसे वरिष्ठ नेताओं में हैं और राज्यसभा में पार्टी की मुखर आवाज रहे हैं। उनका पीछे हटना यह दर्शाता है कि वे संगठनात्मक विवादों से दूर रहना चाहते हैं। 2023 की हार के बाद कांग्रेस अभी भी पुनर्गठन की प्रक्रिया में है। नेतृत्व परिवर्तन के बावजूद कई स्तरों पर संगठनात्मक चुनौतियां बनी हुई हैं। ऐसे में राज्यसभा चुनाव पार्टी की एकजुटता की परीक्षा बन गया है।

भाजपा के लिए तीसरा प्रत्याशी उतारना केवल दबाव की राजनीति नहीं, बल्कि एक रणनीतिक संदेश भी है। 2023 के विधानसभा चुनाव और 2024 के लोकसभा चुनाव में मिली सफलता के बाद पार्टी अपना मनोवैज्ञानिक प्रभाव बनाए रखना चाहती है। वहीं कांग्रेस के लिए यह चुनाव सिर्फ एक सीट बचाने का नहीं, बल्कि अपनी विश्वसनीयता और संगठनात्मक क्षमता साबित करने का अवसर है।

18 जून का मतदान यह तय करेगा कि कांग्रेस अपनी एकजुटता बनाए रखने में सफल होती है या नहीं। यदि वह अपनी सीट सुरक्षित रखती है तो नेतृत्व को मजबूती मिलेगी। वहीं किसी प्रकार की क्रॉस वोटिंग भविष्य की राजनीतिक चुनौतियों को और बढ़ा सकती है। भाजपा के लिए यह अवसर है, जबकि कांग्रेस के लिए यह परीक्षा।

जेन अल्फा कैसे बदल रहा है परिवार की खरीदारी

81 प्रतिशत माता-पिता बच्चों के साथ ऑनलाइन शॉपिंग करते हैं, जबकि 45 प्रतिशत खरीदारी में जेन अल्फा की राय अहम भूमिका निभाती है। 'हाई कंट्रोल, हाई इन्फ्लुएंस' पीढ़ी का डिजिटल उपभोक्तावाद और पारिवारिक अर्थशास्त्र पर असर अब स्पष्ट दिखाई देने लगा है।

भारत में 9 से 16 वर्ष की उम्र के बच्चों की पीढ़ी, जिसे जेन अल्फा कहा जाता है, अब सिर्फ तकनीकी उपभोक्ता नहीं रह गई है। वह परिवार के खरीदारी संबंधी फैसलों को प्रभावित करने वाली एक बड़ी ताकत बन चुकी है। निवेश कंपनी रकम कैपिटल और रिसर्च संस्था यूगोव की संयुक्त रिपोर्ट 'जेन अल्फा डिकोडेड : द कंज्यूमर ब्रांड डायनेमिक्स' में यह खुलासा किया गया है। रिपोर्ट बताती है कि भारत में 40 से 45 प्रतिशत परिवारों के खरीदारी संबंधी फैसलों में बच्चों की भूमिका निर्णायक है।

73.5 प्रतिशत बच्चों के पास अपना स्मार्टफोन है, जबकि 60.3 प्रतिशत के पास लैपटॉप की सुविधा है। 84 प्रतिशत अभिभावक मानते हैं कि वे बच्चों की ऑनलाइन गतिविधियों पर नजर रखते हैं, लेकिन 45 प्रतिशत खरीदारी ऐसी है, जिसमें बच्चे अकेले फैसला लेते हैं। 81 प्रतिशत माता-पिता बच्चों के साथ ऑनलाइन शॉपिंग करते हैं। यह आंकड़ा सिर्फ मार्केटिंग का विषय नहीं, बल्कि परिवार, समाज और अर्थव्यवस्था की बदलती तस्वीर भी है।

जेन अल्फा कौन है : स्क्रीन पर पली-बढ़ी पीढ़ी-2010 के बाद पैदा हुए बच्चे जेन अल्फा कहलाते हैं। इनका बचपन लॉकडाउन, ऑनलाइन क्लास और स्मार्टफोन के साथ बीता है। ये डिजिटल नेटिव हैं। इन्होंने बोलना सीखने से पहले स्क्रीन स्वाइप करना सीखा। रकम कैपिटल की रिपोर्ट के अनुसार भारत में यह पीढ़ी 40-45 प्रतिशत घरेलू खरीदारी को प्रभावित करती है। कपड़े, जूते, गैजेट, खाने-पीने की चीजें और छुट्टियों की जगह तक, हर फैसले में इनकी 'हां' या 'ना' मायने रखती है। वजह साफ है। माता-पिता के पास समय कम है और बच्चों के पास जानकारी ज्यादा। यूट्यूब रिव्यू, इंस्टाग्राम इन्फ्लुएंसर और गेमिंग विज्ञापनों के कारण बच्चे ब्रांड के बारे में माता-पिता से पहले जान जाते हैं।

45 प्रतिशत खरीदारी में जेन अल्फा का प्रभाव : 'पेस्टर पावर' से 'पार्टनर पावर' तक-पहले बच्चे 'मम्मी, वह दिला दो' कहकर जिद करते थे। मार्केटिंग की भाषा में इसे 'पेस्टर पावर' कहा जाता था। अब स्थिति बदल गई है। 81 प्रतिशत माता-पिता बच्चों के साथ ऑनलाइन शॉपिंग करते हैं। अमेजन और फ्लिपकार्ट जैसे प्लेटफॉर्म पर कार्ट में सामान बच्चे डालते हैं, जबकि भुगतान माता-पिता करते हैं।

रिपोर्ट बताती है कि 54 प्रतिशत माता-पिता टीवी और ओटीटी प्लेटफॉर्म पर भी बच्चों की पसंद को प्राथमिकता देते हैं। 53 प्रतिशत बच्चे भोजन की मेज पर या कार में भी स्क्रीन देखते हैं। जब बच्चा दिन में चार-पांच घंटे डिजिटल दुनिया में रहता है, तो उसका एक्सपोजर कई बार माता-पिता से ज्यादा होता है। वह जानता है कि कौन-सा स्नैक हेल्दी है और कौन-सा गेमिंग लैपटॉप बेहतर है। इसलिए माता-पिता अब उसे निर्णय प्रक्रिया का भागीदार मानकर फैसले लेते हैं।

'हाई कंट्रोल, हाई इन्फ्लुएंस' पीढ़ी : दोहरी सच्चाई-रिपोर्ट इसे 'हाई कंट्रोल, हाई इन्फ्लुएंस' पीढ़ी कहती है। 84 प्रतिशत माता-पिता दावा करते हैं कि वे ऑनलाइन निगरानी रखते हैं और 41 प्रतिशत स्क्रीन टाइम पर सख्त नियंत्रण भी रखते हैं। लेकिन सच्चाई यह है कि निगरानी अक्सर तकनीकी सुविधा तक सीमित रह जाती है। बच्चे पैरेंटल कंट्रोल को बायपास करना भी जानते हैं।

58 प्रतिशत बच्चे जिम्मेदार और आत्मनिर्भर बनने का प्रयास कर रहे हैं, लेकिन 54 प्रतिशत कपड़ों या घरेलू कामों में मदद नहीं करते। यानी डिजिटल दुनिया में वे विशेषज्ञ हैं, पर वास्तविक दुनिया की जिम्मेदारियों से अभी भी दूर हैं। कई माता-पिता अपराधबोध में रहते हैं। वे समय नहीं दे पाते, इसलिए गैजेट और ऑनलाइन शॉपिंग के माध्यम से उसकी भरपाई करने की कोशिश करते हैं। नतीजा यह होता है कि बच्चा फैसला लेना सीख जाता है, लेकिन जिम्मेदारी लेना नहीं।

अर्थव्यवस्था पर असर : 2 लाख करोड़ का 'किडफ्लुएंसर' बाजार=जब 9 साल का बच्चा यह तय करने लगे कि घर में कौन-सा ओटीटी सब्सक्रिप्शन लिया जाएगा, तो कंपनियों की रणनीति भी बदल जाती है। भारत में किडफ्लुएंसर मार्केटिंग का बाजार 2026 तक 2 लाख करोड़ रुपये का होने का अनुमान है। अब ब्रांड सीधे माता-पिता नहीं, बल्कि बच्चों को लक्ष्य बनाकर प्रचार कर रहे हैं। कार्टून कैरेक्टर वाले स्नैक्स, गेमिंग फोन और एडुटेक ऐप्स इसके प्रमुख उदाहरण हैं।

इसके फायदे भी हैं। बच्चे गुणवत्ता और सस्टेनेबिलिटी पर सवाल उठाते हैं। कई बार वे माता-पिता को प्लास्टिक का उपयोग कम करने और स्वस्थ भोजन अपनाने के लिए प्रेरित करते हैं। लेकिन दूसरी ओर, इंस्टेंट ग्रैटिफिकेशन की आदत भी बढ़ रही है। दो घंटे में डिलीवरी और एक क्लिक में भुगतान की संस्कृति बच्चों को धैर्य से दूर कर रही है।

डिजिटल पेरेंटिंग नहीं, डिजिटल पार्टनरशिप चाहिए 45 प्रतिशत बच्चे अकेले खरीदारी का फैसला ले रहे हैं। यह चिंता का विषय नहीं है। चिंता की बात यह है कि 54 प्रतिशत माता-पिता मानते हैं कि डिजिटल उपकरणों की उपलब्धता के बावजूद वे बच्चों पर प्रभावी नियंत्रण नहीं रख पा रहे हैं। रोकना समाधान नहीं, सिखाना समाधान है।

सबसे पहले वित्तीय साक्षरता को बचपन से बढ़ावा देना होगा। 12 साल के बच्चे को 500 रुपये का प्रीपेड कार्ड देकर बजट बनाना सिखाया जा सकता है। यदि वह गलती से गेम पर 400 रुपये खर्च कर दे, तो उसे डांटने के बजाय सीख देना अधिक उपयोगी होगा। पैसा और फैसला साथ-साथ सिखाना जरूरी है।

दूसरा, स्क्रीन-फ्री जोन बनाए जाने चाहिए। खाने की मेज और बेडरूम में 'नो फोन' नियम लागू हो। परिवार सप्ताह में एक दिन डिजिटल फास्ट रखे। माता-पिता स्वयं स्क्रीन का सीमित उपयोग करेंगे, तभी बच्चे भी उसका पालन करेंगे।

तीसरा, ब्रांड और सरकार की जिम्मेदारी भी तय होनी चाहिए। ऑनलाइन प्लेटफॉर्म पर 'किड मोड' डिफॉल्ट रूप से उपलब्ध हो। 16 वर्ष से कम आयु के बच्चों को लक्षित करने वाले विज्ञापनों पर सख्त नियम बनाए जाएं। स्कूलों में 'डिजिटल सिटिजनशिप' की शिक्षा दी जाए।

जेन अल्फा की उंगली स्क्रीन पर है, लेकिन उसकी पहुंच परिवार की जेब तक है। 45 प्रतिशत खरीदारी में उसका फैसला प्रभावशाली है। यह एक शक्ति है, जिसे खतरे के बजाय अवसर के रूप में देखना चाहिए। यदि हम बच्चों को केवल उपभोक्ता बनाएंगे, तो वे कल जिद्दी ग्राहक बनेंगे। यदि उन्हें सचेत भागीदार बनाएंगे, तो वे जिम्मेदार नागरिक बनेंगे। 81 प्रतिशत माता-पिता का बच्चों के साथ शॉपिंग करना बताता है कि परिवारों की संरचना और निर्णय प्रक्रिया बदल रही है। अब माता-पिता डिक्टेटर नहीं, बल्कि कोच की भूमिका में हैं। कोच का काम रोकना नहीं, दिशा देना होता है।

जेन अल्फा को रोका नहीं जा सकता, क्योंकि यह दुनिया उसी की है। लेकिन उसे यह जरूर सिखाया जा सकता है कि हर 'ऐड टू कार्ट' से पहले 'ऐड टू थिंक' जरूरी है। क्योंकि जो पीढ़ी 9 साल की उम्र में ब्रांड चुनना सीख गई है, वही 19 साल की उम्र में देश का भविष्य तय करने वाले फैसले भी करेगी। उसका निर्णय सिर्फ शॉपिंग कार्ट नहीं, समाज की दिशा भी निर्धारित करेगा।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)

आजकल

सिस्टम की खामोशी के खिलाफ पुरुषार्थ का हथौड़ा

बड़वानी के आदिवासियों ने जो कर दिखाया, वह केवल दो किलोमीटर सड़क का निर्माण नहीं, बल्कि व्यवस्था के मुंह पर करारा तमाचा है। जब पंचायत से लेकर प्रशासन तक वर्षों तक गुहार लगाने के बाद भी सुनवाई नहीं हुई, तब 35 परिवारों के 250 ग्रामीणों ने 40 दिनों तक श्रमदान कर पहाड़ काटकर अपने लिए रास्ता बना लिया। एक बार फिर साबित हुआ कि जब कुर्सियां सो जाती हैं, तब फावड़े इतिहास लिखते हैं।

यह घटना बिहार के दशरथ मांझी की याद दिलाती है, लेकिन फर्क इतना है कि यहां एक नहीं, पूरा गांव मांझी बन गया। यह प्रेरणा का विषय जरूर है, पर इससे कहीं बड़ा सवाल शासन-प्रशासन की जवाबदेही पर खड़ा होता है। सड़क, पानी और बिजली जैसी मूलभूत सुविधाएं नागरिकों का अधिकार हैं, उपकार नहीं। यदि जनता को अपनी सड़क खुद बनानी पड़े, तो योजनाओं और तंत्र का औचित्य क्या रह जाता है?

रिपोर्ट बताती है कि ग्रामीणों ने हर सरकारी दरवाजा खटखटाया, आवेदन दिए और नेताओं के आश्वासन भी सुने, लेकिन नतीजा शून्य रहा। बरसात में गांव टापू बन जाता था और मरीजों तथा गर्भवती महिलाओं को कई किलोमीटर पैदल ले जाना पड़ता था। आखिरकार लोगों ने सरकार का इंतजार छोड़ अपने पुरुषार्थ पर भरोसा किया।

यह सामुदायिक भागीदारी का अनुकरणीय उदाहरण है, लेकिन इसे प्रशासन की सफलता नहीं कहा जा सकता। अफसरशाही की संवेदनहीनता और फाइलों में दबे विकास कार्य आज भी दूरदराज के गांवों की सबसे बड़ी समस्या हैं। कागजों पर योजनाएं बनती हैं, बजट आवंटित होता है, लेकिन दुर्गम क्षेत्रों तक पहुंचते-पहुंचते विकास दम तोड़ देता है।

बड़वानी के ग्रामीणों ने साबित किया है कि हौसला हो तो पहाड़ भी रास्ता दे देते हैं। लेकिन जब पूरा गांव दशरथ मांझी बनने को मजबूर हो जाए, तो यह जनता की नहीं, व्यवस्था की विफलता का प्रमाण है। सरकार को इन ग्रामीणों के पुरुषार्थ को सलाम करने के साथ यह सुनिश्चित करना होगा कि भविष्य में किसी गांव को अपने अधिकार के लिए पहाड़ न काटना पड़े।

कमिटमेंट किसी का, भुगत रही प्रदेश की जनता

वादे के बोझ तले दबा उपभोक्ता, करोड़ों का बोझ बना गले की फांस

'गारंटीड पेमेंट' की शर्त में उलझा प्रदेश, बिजली खरीदे या नहीं, 11,210 करोड़ देना तय। जनता की जेब पर भारी बोझ।

दीर्घकालीन पीपीए बने गले की फांस। सरप्लस बिजली के बावजूद महंगे फिक्स चार्ज से उपभोक्ता त्रस्त। अनुबंधों की समीक्षा की मांग तेज।

जबलपुर/भोपाल। मध्यप्रदेश में बिजली की उपलब्धता बढ़ी, पर उपभोक्ता की राहत घट गई। कारण हैं वे दीर्घकालीन बिजली खरीद समझौते (पीपीए), जो कभी संकट से निपटने का हल थे, आज आर्थिक बोझ बन गए हैं। मप्र पावर मैनेजमेंट कंपनी को बिजली खरीदे बिना भी निजी उत्पादक कंपनियों को 'फिक्स चार्ज' के रूप में हर साल हजारों करोड़ रुपये चुकाने पड़ रहे हैं। वर्ष 2026-27 में यह राशि 11,210 करोड़ रुपये तक पहुंचने का अनुमान है। विडंबना यह है कि प्रदेश के पास जरूरत से ज्यादा बिजली है, फिर भी जनता को महंगी बिजली का बिल भरना पड़ रहा है।

शर्त क्या है : लो या न लो, पैसा दो

करीब दो दशक पहले प्रदेश में बिजली संकट था। मांग अधिक और उत्पादन कम था। तब राज्य सरकार ने ताप, जल, विंड और सोलर परियोजनाओं से 20 से 25 वर्ष के लिए पीपीए किए। अनुबंध की शर्त थी कि बिजली खरीदो या न खरीदो, 'कैपेसिटी चार्ज' यानी फिक्स चार्ज देना अनिवार्य होगा। उस समय यह शर्त निवेशकों को आकर्षित करने के लिए जरूरी मानी गई। कंपनियों ने हजारों करोड़ रुपये लगाकर प्लांट लगाए, पर आज स्थिति उलट है। प्रदेश में स्थापित क्षमता 27,126 मेगावाट तक पहुंच गई है, जबकि अधिकतम मांग 17,000 मेगावाट के आसपास रहती है। यानी प्रदेश बिजली उत्पादन के मामले में सरप्लस है। इसके बावजूद मप्र पावर मैनेजमेंट कंपनी को अनुबंधित कंपनियों को हर हाल में तय भुगतान करना पड़ रहा है।

11,210 करोड़ का गणित, कहां से आएगा पैसा-वित्तीय वर्ष 2026-27 के लिए अनुमानित 11,210 करोड़ रुपये का फिक्स चार्ज सीधे बिजली दरों में जुड़ता है। 'एनर्जी चार्ज' यानी जितनी बिजली ली, उतना पैसा देना तर्कसंगत है, लेकिन 'फिक्स चार्ज' बिना एक यूनिट बिजली लिए भी देना पड़ता है। नतीजा यह है कि डिस्कॉम की लागत बढ़ती है और वह यह भार टैरिफ के जरिए आम उपभोक्ता पर डाल देता है। घरेलू उपभोक्ता 8 रुपये प्रति यूनिट तक भुगतान कर रहा है, जबकि उद्योग पलायन की सोच रहे हैं। महाकौशल उद्योग संघ के अध्यक्ष डी.आर. जेसवानी कहते हैं, 'सरप्लस बिजली होने के बावजूद बिजली महंगी है। पीपीए की शर्तों का रिव्यू नहीं हुआ तो उद्योगों की कमर टूट जाएगी।'

क्यों अड़चन बने अनुबंध-पहला कारण मांग का गलत आकलन है। 2000 के दशक में औद्योगिक विकास दर 12 प्रतिशत मानी गई थी, जबकि वास्तविक वृद्धि 6-7 प्रतिशत रही। बिजली की मांग उतनी नहीं बढ़ी, जितनी अनुमानित थी।

दूसरा कारण सस्ती बिजली के विकल्पों का उपलब्ध होना है। सोलर टैरिफ आज 2.50 रुपये प्रति यूनिट तक आ गया है, जबकि पुराने थर्मल पीपीए में 4.50 से 5.50 रुपये प्रति यूनिट की दरें तय हैं। इसके बावजूद 'मस्ट रन' शर्त के कारण महंगी बिजली भी लेनी पड़ती है।

तीसरा कारण कानूनी जटिलता है। पीपीए 'सॉवरेन गारंटी' वाले अनुबंध हैं। इन्हें एकतरफा रद्द करने पर अंतरराष्ट्रीय मध्यस्थता में भारी जुर्माना लग सकता है।

समाधान क्या है, रास्ते बंद नहीं, कठिन जरूर-रिटायर्ड अतिरिक्त मुख्य अभियंता राजेंद्र अग्रवाल कहते हैं कि मप्र पावर मैनेजमेंट कंपनी को लगभग 11,000 करोड़ रुपये का नुकसान हो रहा है। अब दीर्घकालीन अनुबंधों की समीक्षा की जरूरत है। हालांकि उन्हें रद्द करना अंतिम विकल्प होना चाहिए। उससे पहले चार रास्तों पर विचार किया जा सकता है।

केंद्र सरकार की 'शक्ति नीति' के तहत पुराने पीपीए को बाजार दर के अनुरूप लाने के लिए कंपनियों से बातचीत की जाए। कई राज्यों ने इस प्रक्रिया में दरों में लगभग 1 रुपये प्रति यूनिट तक कमी करवाई है।

महंगी थर्मल बिजली को सस्ती सोलर और विंड ऊर्जा के साथ 'बंडल' कर औसत दर घटाई जा सकती है। एनटीपीसी यह मॉडल अपना चुका है।

सरप्लस बिजली को पावर एक्सचेंज के माध्यम से दूसरे राज्यों को बेचा जाए। मप्र ने 2023-24 में लगभग 4,000 करोड़ रुपये की बिजली बेची भी थी, लेकिन उससे फिक्स चार्ज की पूरी भरपाई नहीं हो पाती। विधायी स्तर पर भी हस्तक्षेप की आवश्यकता है। इलेक्ट्रिसिटी एक्ट, 2003 की धारा 86 के तहत राज्य आयोग को जनहित में टैरिफ संशोधन का अधिकार है। मप्र विद्युत नियामक आयोग को 'कॉस्ट प्लस' मॉडल की बजाय 'कॉम्पिटिटिव बिडिंग' को सख्ती से लागू करना चाहिए।

जनता क्यों भुगते पिछली सरकारों की गलती

वर्षों पहले सत्ता परिवर्तन के दौर में बिजली कटौती बड़ा राजनीतिक मुद्दा था। हर सरकार ने 'जीरो पावर कट' के लक्ष्य को हासिल करने के लिए जल्दबाजी में पीपीए पर हस्ताक्षर किए। 'बिजली की कमी न हो' की चिंता में लागत पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया। आज जब उत्पादन जरूरत से अधिक है, तो वही अनुबंध जंजीर बन गए हैं। सवाल यह है कि नीति-निर्माण में दूरदर्शिता की कमी की कीमत क्या हमेशा आम आदमी ही चुकाएगा?

'अनुबंध' की समीक्षा ही 'अंधेर' से बचाएगी- बिजली अब विलासिता नहीं, आवश्यकता है। किसान, छात्र, गृहिणी और उद्योग, सभी की उत्पादकता बिजली की दरों से जुड़ी है। यदि 11,210 करोड़ रुपये का 'गारंटीड पेमेंट' जारी रहा, तो मध्यप्रदेश 'सरप्लस स्टेट' होकर भी 'कॉस्टली स्टेट' कहलाएगा।

राज्य सरकार को तत्काल एक 'पीपीए रिव्यू कमेटी' बनाकर उसमें विधि विशेषज्ञों, वित्तीय विशेषज्ञों और उपभोक्ता प्रतिनिधियों को शामिल करना चाहिए। 'उज्ज्वल' योजना से घर-घर बिजली पहुंची, अब उचित दर पर बिजली पहुंचाना अगली चुनौती है। वरना इतिहास पूछेगा कि जब बिजली उपलब्ध थी, तब जनता आर्थिक अंधेरे में क्यों थी? और जवाब होगा कि गारंटी कंपनियों को मिली थी, जनता को नहीं।

अनुबंध पवित्र होते हैं, लेकिन जनता का हित सर्वोपरि है। समय आ गया है कि पीपीए की शर्तों को जनता की शर्तों के अनुरूप बनाया जाए।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)

जल, जंगल संरक्षण पर्यावरण बचाने के लिए जागरूकता जरूरी

डॉ. गार्गी पाण्डे

सामूहिक जिम्मेदारी, जनसहभागिता की बारी

साफ लहरों वाला समंदर, हरियाली से ढके पहाड़ और निर्मल बहती नदियां... इन्हें देखकर किसका मन प्रसन्न नहीं होता? प्रकृति का यह सुंदर रूप हर किसी को आकर्षित करता है। सुबह की ताजी हवा, पक्षियों का कलरव, पहाड़ों की शांति और नदियों की कल-कल ध्वनि मन को सुकून देती है। लेकिन विडंबना यह है कि जिस प्रकृति की सुंदरता पर हम मोहित होते हैं, उसकी रक्षा की जिम्मेदारी लेने से अक्सर पीछे हट जाते हैं। कचरा साफ करना तो दूर, अपना ही कचरा उसमें शामिल कर देते हैं और फिर भी एक स्वच्छ पर्यावरण की अपेक्षा रखते हैं। हम प्रकृति से बहुत कुछ लेते हैं, लेकिन उसे लौटाने की भावना कहीं पीछे छूटती जा रही है।

समंदर... समंदर हमारे मन की गहराई से भी गहरा है। उसके भीतर कितना कुछ समाया है, इसका अंदाजा लगाना आसान नहीं। फिर भी वह अपनी लहरों के सहारे बहुत कुछ किनारों तक पहुंचा देता है। मानो वह अपने भीतर कुछ भी सहेजकर नहीं रखता। लेकिन हम उसकी विशालता और उदारता को समझने के बजाय उसे प्रदूषण का बोझ दे रहे हैं। प्लास्टिक, रासायनिक कचरा और अन्य अपशिष्ट पदार्थ लगातार समुद्री जीवन के लिए खतरा बनते जा रहे हैं। जो समंदर हमें जीवन, सुंदरता और संतुलन देता है, हम उसी को गंदगी लौटाते हैं। समुद्री जीवों का अस्तित्व भी इसी कारण संकट में पड़ रहा है। यदि समय रहते हमने अपनी आदतें नहीं बदलीं, तो आने वाली पीढ़ियां स्वच्छ समुद्र देखने के लिए तरस सकती हैं।

पहाड़... पहाड़ों को देखकर हमेशा लगता है कि मजबूती को शोर मचाने की आवश्यकता नहीं होती। वे हर मौसम को सहते हैं, फिर भी अडिग खड़े रहते हैं। उनकी हरियाली, उनकी शांति और उनका धैर्य प्रकृति की अमूल्य धरोहर हैं। पहाड़ हमें सिखाते हैं कि परिस्थितियां कैसी भी हों, अपने मूल्यों और संतुलन को नहीं छोड़ना चाहिए। दुर्भाग्य से विकास की दौड़ में हम उनके अस्तित्व को भी लगातार चोट पहुंचा रहे हैं। अंधाधुंध निर्माण, पेड़ों की कटाई और खनन गतिविधियों ने पर्वतीय क्षेत्रों के प्राकृतिक संतुलन को प्रभावित किया है। इसका परिणाम भूस्खलन, जल संकट और जैव विविधता के नुकसान के रूप में सामने आ रहा है। पहाड़ केवल पर्यटन स्थल नहीं, बल्कि जलवायु संतुलन और जल स्रोतों के संरक्षक भी हैं।

नदियां...-नदियां जब स्वच्छ और निर्मल बहती हैं तो केवल जल नहीं बहता, जीवन बहता है। खेतों की हरियाली, जीव-जंतुओं का अस्तित्व और हमारी अनेक आवश्यकताएं नदियों पर निर्भर हैं। नदी हमें निरंतर आगे बढ़ते रहने का संदेश देती है। लेकिन आज हम उन्हीं नदियों में कचरा और प्रदूषण बहाकर उनके अस्तित्व को संकट में डाल रहे हैं। कई नदियां औद्योगिक अपशिष्ट, सीवेज और प्लास्टिक प्रदूषण से जूझ रही हैं। नदियों का संरक्षण केवल पर्यावरणीय विषय नहीं, बल्कि मानव जीवन और भविष्य की सुरक्षा का प्रश्न भी है। यदि नदियां स्वस्थ रहेंगी, तभी समाज और अर्थव्यवस्था भी स्वस्थ रह पाएंगे।

हमारी जिम्मेदारी-काश! हम यह समझ पाते कि पर्यावरण की रक्षा किसी एक व्यक्ति, संस्था या सरकार की जिम्मेदारी नहीं है। इसकी शुरुआत हमसे होती है। अक्सर हम सोचते हैं कि हमारे अकेले के प्रयास से क्या होगा, लेकिन हर बड़ा परिवर्तन एक छोटे कदम से ही शुरू होता है।

हम सुधरेंगे तो जग सुधरेगा।-खुद अकेले इस राह पर चलकर तो देखिए, कारवां अपने आप बनता जाएगा। यदि हम अपने घर, अपने मोहल्ले और अपने आसपास की स्वच्छता की जिम्मेदारी लेने लगें, तो उसका प्रभाव दूर तक दिखाई देगा। एक पौधा लगाना, प्लास्टिक का कम उपयोग करना, जल को व्यर्थ न बहाना, बिजली की बचत करना और कचरे को सही स्थान पर डालना, ये छोटे कदम ही बड़े बदलाव की नींव बनते हैं। पर्यावरण संरक्षण केवल सरकारी योजनाओं से संभव नहीं है, इसके लिए जनभागीदारी सबसे महत्वपूर्ण है।

पर्यावरण केवल प्रकृति नहीं, हमारा वर्तमान और भविष्य दोनों है। समंदर, पहाड़, नदियां और हरियाली हमारी धरोहर हैं। इन्हें बचाना किसी और पर उपकार नहीं, बल्कि आने वाली पीढ़ियों के प्रति हमारी जिम्मेदारी है। यदि हम अपने प्रयासों से पर्यावरण की रक्षा में थोड़ा भी योगदान दे पाए, तो यही एक जागरूक और अच्छे नागरिक होने का सबसे बड़ा प्रमाण होगा। प्रकृति हमें जीवन देती है, अब उसे सुरक्षित रखना हमारा कर्तव्य है। यही कर्तव्यबोध आने वाले समय में स्वच्छ, सुरक्षित और संतुलित पर्यावरण की सबसे मजबूत नींव साबित होगा।